इकाई 23

याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय)

ईकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप -

- याज्ञवल्क्यस्मृति के अन्तर्गत व्यवहाराध्याय के स्वरूप से परिचित होगें।
- व्यवहाराध्याय के अन्तर्गत वर्णित प्रकरणों का क्रमश: अभिज्ञान कर पायेंगे।
- धर्मशास्त्रान्तर्गत अनेक विवादों के परिप्रेक्ष्य में याज्ञवल्क्य स्मृति का क्या मत है, इसको जान पायेंगे।
- इन विषयों को जानने के बाद तत्कालीन क्रियाकलापों का भी अवबोध कर पायेंगे।

23.1 प्रस्तावना

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये पुरुषार्थ चतुष्टय के अभिधान से जाने जाते हैं। इनमें धर्मपूर्वक अर्थ की प्राप्ति और उस अर्थ से सभी कामनाओं की पूर्ति करने के पश्चात् मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है। वेद द्वारा प्रतिपादित धर्म है और वेदानुसारिणी स्मृतियाँ तन्मूलक होने से तद्वत् प्रमाण हैं। "धर्मशास्त्र तु वै स्मृति:" के मतानुसार स्मृतिग्रन्थ धर्मशास्त्रस्वरूप हैं। स्मृतिग्रन्थों में याज्ञवल्क्य स्मृति का महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसके प्रकरणों के अन्तर्गत विविध भौतिक विषयों को समविष्ट किया गया है। इस स्मृतिग्रन्थ के अन्तर्गत आचाराध्याय (१३ प्रकरण), व्यवहाराध्याय (२५ प्रकरण) और प्रायश्चिताध्याय (६ प्रकरण) तथा १००३ श्लोक हैं। इस स्मृति का संम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की परम्परा से है। इस पर तीन टीकायें विश्वरूपकृत बालक्रीड़ा (८००-८२५ ई.), अपरार्ककृत याज्ञवल्कीय धर्मशास्त्र निबन्ध (प्राय: १२वीं शती) तथा विज्ञानेश्वरकृत मिताक्षरा (१०७०-११०० ई.) प्रसिद्ध हैं। इस स्मृति का काल प्राय: प्रथम से तृतीय शताब्दी के मध्य माना जाता है। आधुनिक भारतीय न्यायिक प्रणाली में इस स्मृति के व्यवहाराध्याय के प्रमुख विषयों को समाविष्ट किया गया है। इस ग्रन्थ का परिचय और प्रतिपाद्य विषय प्रमुख रूप से निम्नलिखित हैं -

23.2 याज्ञवल्क्यस्मृति (व्यवहाराध्याय) का सामान्य परिचय

महर्षि याज्ञवल्क्य प्रणीत याज्ञवल्क्यस्मृति का धर्मशास्त्र में अनुपम स्थान है । इस धर्मशास्त्रीय स्मृतिग्रन्थ के व्यवहाराध्याय के अन्तर्गत साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण (१-८ श्लोक), असाधा-रणव्यवहारमातृकाप्रकरण (९-३६ श्लोक), ऋणादानप्रकरण (३७-६४ श्लोक), उपनिधिप्रकरण (६५-६७ श्लोक), साक्षिप्रकरण (६८-८३ श्लोक), लेख्यप्रकरण (८४-९४ श्लोक), दिव्यप्रकरण (९५-११३ श्लोक), दायविभागप्रकरण (११४-१४९ श्लोक), सीमाविवादप्रकरण (१५०-१५८ श्लोक), स्वामिपालविवादप्रकरण (१५९-१६७ श्लोक), स्वामिविक्रयप्रकरण (१६८-१७४ श्लोक), दत्ताप्रदानिकप्रकरण (१७५-१७६ श्लोक), क्रीतानुशयप्रकरण (१७७-१८१ श्लोक), अभ्युप्रेत्या-शुश्रुषाप्रकरण (१८२-१८४ श्लोक), संविद्व्यतिक्रमप्रकरण (१८५-१९२ श्लोक), वेतनादानप्रकरण (१९३-१९८ श्लोक), द्यूतसामाह्वयप्रकरण (१९९-२०३ श्लोक), वाक्पारुष्यप्रकरण (२०४-२११ श्लोक), दण्डपारुष्यप्रकरण (२१२-२२९ श्लोक), साहसप्रकरण (२३०-२५३ श्लोक), विक्रीयासं-प्रदानप्रकरण (२५४-२५८ श्लोक), संभूयसमुत्थानप्रकरण (२५९-२६५ श्लोक), स्तेयप्रकरण (२६६-२८२ श्लोक), स्त्रीसंग्रहणप्रकरण (२८३-२९४ श्लोक), और प्रकीर्णकप्रकरण (२९५-३०७ श्लोक) का वर्णन है । व्यवहाराध्याय में कुल २५ प्रकरण हैं तथा ३०७ श्लोक हैं, जिनमें तत्सम्बन्धी विषयों का उपस्थापन किया गया है ।

23.3 साधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा सामान्य वाद-विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है । तदनुसार राजा को क्रोध और लोभ से रहित होकर विद्वान् ब्राह्मणों के साथ धर्मशास्त्र के अनुसार विवादों का निपटारा करना चाहिये अथवा उन विवादों पर विचार करना चाहिये । राजा को मीमांसा व्याकरणादि तथा वेदाध्ययन से युक्त धर्मशास्त्र के ज्ञाता और सत्य बोलने वाले पुरुषों को सभासद बनाना चाहिये जो शत्रु और मित्र के विवाद में समान निर्णय लेने की क्षमता रखते हों । राजा के कार्य की व्यस्तता अथवा अस्वस्थता होने के कारण विवादों के लिये सभी धर्मों के ज्ञाता ब्राह्मण को विवाद देखने के लिये नियुक्त करे । स्नेह, लाभ, भय के कारण विवाद में धर्मशास्त्र के विरुद्ध आचरण करनेवालों को उस विवाद में पराजय का जितना दण्ड हो, उसका दुगुना दण्ड ऐसा आचरण करनेवाले सभी सभासदों से पृथक्-पृथक् लेना चाहिये । किसी अन्य के द्वारा धर्मशास्त्र तथा आचार के विरुद्ध प्रताड़ित होने पर पीड़ित व्यक्ति राजा से निवेदन करे तो वह वाद का विषय होता है -

स्मृत्याचारव्यपेतेन मार्गेणाधर्षित: परै: ।
आवेदयति चेद्राज्ञे व्यवहारपदं हि तत् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ५

23.3.1चतुष्पाद व्यवहार - (१) जैसा वादी (अर्थी) ने आवेदन किया है वैसा ही प्रतिवादी (प्रत्यर्थी) के सामने वर्ष, मास, पक्ष, दिन, नाम और जाति के साथ लिखे । (२) वादी के कथन को सुनने के पश्चात् प्रतिवादी द्वारा सुनाये गये का उत्तर प्रथम आवेदक वादी (अर्थी) के सामने लिखना चाहिये । (३) प्रतिवादी का उत्तर सुनने के बाद वादी शीघ्र ही लगाये गये अभियोग का प्रमाण को लिखवाये । (४) उस प्रमाण के सिद्ध हो जाने पर वादी की विजय होती है और इसके विपरीत प्रमाण के सिद्ध न होने पर वह हार जाता है । इस प्रकार विवादों में यह चतुष्पाद व्यवहार बतलाया गया है ।

23.4 असाधारणव्यवहारमातृकाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा असामान्य वादविवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है । तदनुसार अभियोग का निस्तारण किये बिना अभियोक्ता को अभियुक्त नही बनाया जाना चाहिये । किसी अन्य

के द्वारा जिस पर अभियोग लगाया गया हो उस पर अभियोग न करे तथा जो बात अभियोग लगाते समय कही गयी हो उसे लिखते समय परिवर्तित न करे किन्तु कलह (वाक्-पारुष्य) और साहस (विष-शस्त्रादि से प्राणहरणादि) में उलटा अभियोग (प्रत्यभियोग) भी लगाया जा सकता है। दोनों कार्यों के निर्णय में समर्थ उपयुक्त जमानतदार (प्रतिभू) भी अवश्य लेना चाहिये। साहस (विष-शस्त्रादि से प्राणहरणादि), चोरी, गाली, गाय, अभिशाप और स्त्री से सम्बन्धित विवादों का शीघ्र निर्णय करना चाहिये और विषयों के अन्तर्गत इच्छानुसार वादी, प्रतिवादी, सभ्य और सभापति के अनुसार समय से निर्णय करना चाहिये। यदि पण (शर्तबाजी) लगाकर विवाद हो तो धन हारनेवाले से जीतनेवालों को दिलवाना चाहिये और बाजी राजा को दिलवाना चाहिये। बाजी लगाने वाले के हारने पर पण राजा को देय होता है और धन जीतने वाले को दिलाया जाता है। छल को हटाकर राजा को सत्य बात से निर्णय करना चाहिये क्योंकि यदि सत्य बात न कही जाय तो पराजित होना पड़ता है। वादी द्वारा लिखवायी गयी वस्तुओं में से प्रतिवादी यदि अनेक का लेना स्वीकार नहीं करता है और एक भी वस्तु का लेना स्वीकार करता है या करवा लिया जाता है तो राजा के द्वारा सभी वस्तुयें दिलायी जानी चाहिये। वादी भी उन वस्तुओं को न ले जिसके लिये उसने पूर्व में निवेदन नहीं किया है। दो स्मृतियों में विरोध होने पर प्राचीन व्यवहार से निर्णय करना चाहिये। सार्वकालिक नियम यह है कि अर्थशास्त्र की अपेक्षा धर्मशास्त्र बलवान् होता है - **"अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्मशास्त्रमिति स्थितिः। व्यवहाराध्याय २१"**। सभी प्रकार के धन के विवादों में बाद के कार्य प्रबल होते हैं किन्तु बन्धन (आधि), दान, और क्रय में पहले के कार्य प्रबल होते हैं। वास्तविक स्वामी के देखने और न बोलने पर दूसरे द्वारा कब्जा की गयी जमीन पर बीस वर्षों बाद वास्तविक स्वामित्व की हानि हो जाती है और धन का दस वर्षों तक बिना प्रतिवाद के उपभोग करने पर स्वामित्व की हानि हो जाती है। आधि (बन्धक), सीमा, उपनिक्षेप (विश्वासपूर्वक किसी के पास रखा गया) तथा मूर्ख और बालक का धन, उपनिधि, राजधन, स्त्रीधन तथा श्रोत्रियधन कभी भी स्वामी के अधिकार से विरहित नहीं होता। बन्धक आदि को चुरानेवाले से धन को धन के स्वामी को दिलवाना चाहिये और उसके बराबर अथवा अपहरणकर्ता की शक्ति के अनुसार दण्ड राजा को दिलवाना चाहिये। बिना पूर्व की तीन पीढ़ी (प्रपितामह, पितामह और पिता) के क्रम के भोग से आगम (लेख) बलवान् होता है किन्तु जहाँ थोड़ा भी कब्जा (भोग) नहीं है, वहाँ आगम में भी कोई बल नहीं होता है। जिस व्यक्ति ने भूम्यादि का लेख किया है, वह अभियोग चलने पर उसे उद्धृत करे। उसका पुत्र और पौत्र उसे प्रस्तुत न करे क्योंकि उनके लिये भोग (कब्जा) ही श्रेष्ठ प्रमाण है। जो व्यक्ति अभियुक्त होने पर अर्थात् अभियोग चलने के बाद मर जाय तो उसका धन जो प्राप्त करे वह उस लेख को प्रस्तुत करे। ऐसी स्थिति में लेख के बिना भोग प्रमाण नहीं है। राजा के द्वारा नियुक्त मनुष्यों के व्यवहार दर्शन के लिये पूग (समूह), श्रेणी तथा कुल इनमें पूर्व-पूर्व को श्रेष्ठ मानना चाहिये। बलपूर्वक एवं उपाधि (भयादि) द्वारा निष्पन्न व्यवहारों तथा स्त्री के साथ रात्रि में, घर में तथा ग्राम के बाहर किये गये व्यवहारों को लौटा देना चाहिये अर्थात् अप्रमाण मानना चाहिये। मत्त (नशायुक्त), उन्मत्त (पागल), आर्त्त (रोगी दुःखी),व्यसनी, बालक, भयभीत पर चलाया गया व्यवहार एवं असम्बद्ध व्यक्ति पर चलाया गया व्यवहार सिद्ध नहीं होता है। नष्ट हुआ धन जो स्थान के रक्षकादि द्वारा प्राप्त हुआ है वह उसके स्वामी राजा को दे। वह धनी यदि चिह्नों के द्वारा उसे प्रमाणित नहीं कर सके तो उसके बराबर दण्ड का पात्र होता है। राजा ऐसा धन प्राप्त कर आधा ब्राह्मण को दे और यदि विद्वान् ब्राह्मण ऐसी निधि प्राप्त करे तो संपूर्ण ले लेवे क्योंकि वह सम्पर्ण विश्व का स्वामी है। अन्य के द्वारा ऐसी निधि प्राप्त

करने पर राजा षष्ठांश लाने अथवा प्राप्त करनेवाले को देवें। ऐसी निधि प्राप्त कर कोई न बतावे तो राजा के ज्ञात होने पर उससे संपूर्ण निधि लेकर उसके शक्ति के अनुसार दण्ड दे। चोरों द्वारा चुरायी गये धन को राजा अपने देश के उस व्यक्ति को जिसका धन उन चोरों ने चुराया है उसे प्रदान करवाये। यदि राजा ऐसा नहीं करता है तो जिसका धन चोरी हुआ है उसका और चुरानेवाले चोर का राजा को पाप लगता है।

23.4.1 अविश्वसनीय साक्षी (गवाह) -

अभियोग और साक्षी में अविश्वसनीय वह होता है, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता है, ओठ के निचले हिस्से तक को जीभ से चाटता है, जिसके ललाट पे पसीना होता है, मुख विवर्ण हो जाता है, हँसमुख होकर अथवा हकलाकर (स्खलित) बोलती है, परस्पर विरोधी अनेक बातें कहता है और दूसरे की कही बात का उत्तर नहीं देता, आँख नहीं मिलाता और ओठों को टेढ़ा करता है। ये मन, वाणी और कर्म की विकृतियाँ जिसमें स्वभाव से हो, भयादि से नहीं, वही अभियोग और साक्ष्य में अविश्वसनीय (दुष्ट) होता है। ये दोषयुक्त साक्षी के प्रति संभावनायें हैं, निश्चय नहीं। जो व्यक्ति संदिग्ध धन को स्वतंत्रतापूर्वक ग्रहण कर लेता है और धन मांगने पर भाग जाता है और राजा के बुलाये जाने पर नहीं बोलता है, वह हीन और दण्डनीय है। दोनो पक्षों के साक्षी उपस्थित हों तो प्रथम पक्ष के साक्षी से पूछना चाहिये। पूर्वपक्ष के अस्वीकृत हो जाने पर उत्तरपक्ष के साक्षियों को सुनना चाहिये।

23.4.2 वादविषयक प्रमाण -

किसी भी वाद के लिखित, उपभोग और साक्षी ये तीन प्रमाण हैं। इनमें किसी के न होने पर दिव्य प्रमाणों में से कोई प्रमाण का ग्रहण करना चाहिये।

23.5 ऋणादानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा ऋणसम्बन्धी विषयों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार बन्धक रखे जाने पर प्रत्येक मास उसका अस्सीवां भाग ब्याज होता है किन्तु बन्धक नहीं रखे जाने की स्थिति में वर्णक्रम (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) से दो, तीन, चार और पाँच प्रतिशत वृद्धि होती है। जो ब्याज पर धन लेता है और अधिक कमाने के लिये जंगल में चला जाता है उससे दश प्रतिशत और जो समुद्र गमन करता है उनसे बीस प्रतिशत ब्याज लेना चाहिये अथवा सभी जातियों के लोगो के द्वारा स्वीकृत किये गये ब्याज को ही लेना चाहिये। पशु और स्त्री का ब्याज उसकी सन्तान है। तेल-घृत (रस) आदि का ब्याज स्वीकृत ब्याज से अधिकतम आठगुना हो सकता है और वस्त्र, धान्य और स्वर्ण का अधिकतम ब्याज चौगुना, तिगुना अथवा दुगुना हो सकता है। दिये गये धन को धर्मपूर्वक लेने वाले की शिकायत राजा से नहीं करनी चाहिये। यदि उस धन को लेने का प्रयास करने पर ऋणग्रहीता राजा के समीप जाता है तो राजा ऋणग्रहीता से ऋणदाता के धन को दिलावे और ऋणग्रहीता को दण्ड भी देवे। समान जाति के बहुत ऋण-दाताओं के होने पर जिस क्रम से ऋणग्रहीता ने ऋण लिया है धनियों को उसी क्रम ऋण दिलावे और भिन्न जातीय ऋणदाताओं के होने पर पहले ब्राह्मण का धन दिलाकर उसके बाद क्षत्रिय आदि का धन दिलवाना चाहिये। राजा ऋणी से धन वसूल कर धनी को दिलवाता है तो ऋणी से वास्तविक धन से दश प्रतिशत और प्राप्त करने वाले से पाँच प्रतिशत धन वसूल करे। धनी व्यक्ति अपने से निम्न जाति के ऋणी से यदि वह धन लौटाने में असमर्थ है तो ऋण के लिये उसकी जाति के अनुरूप कर्म करावे। यदि ब्राह्मण लौटाने में असमर्थ हो तो जैसे-जैसे उसके पास धन हो धीरे-धीरे उससे वापस ले। यदि ऋणी द्वारा लौटाये जाने पर धनी सूद के लिये प्रयुक्त अपने धन को न ले तो ऋणी उसे मध्यस्थ के पास स्थापित कर दे

और उसके बाद उसमें ब्याज प्राप्त नहीं होता है। परिवार के निमित्त यदि सम्मिलित परिवार के व्यक्तियों द्वारा या एक-एक व्यक्ति द्वारा कोई ऋण लिया गया है तो उसे परिवार का मुखिया दे और उसके मरने या बाहर चले जाने पर उसके उत्तराधिकारी को देना चाहिये। जो ऋण कुटुम्ब के लिये नहीं लिया गया है ऐसे पति और पुत्र द्वारा लिये ऋण को स्त्री न लौटावे और पुत्र द्वारा लिये गये ऋण को पिता को लौटाने की बाध्यता नहीं है। पति स्त्री द्वारा लिये गये (जो ऋण कुटुम्ब के लिये नहीं लिया गया है) ऐसे ऋण को न दे। सुरापानऋण, वेश्यागमनऋण, द्यूतक्रीडाऋण, दण्डऋण, करऋण, वृथादान आदि पैतृक ऋणो, दण्ड और शुल्कों तथा दानों को पुत्र को नहीं देना चाहिये। ग्वाले, मद्य बनानेवाले, नट, धोबी, बहेलिया (व्याध) की स्त्रियों के लिये ऋण को उनका परि दे क्योंकि उनकी जीविका उनकी स्त्रियों के अधीन है। मरणासन्न अथवा प्रवास में जाते समय पति द्वारा लिया गया या पति के साथ लिया गया अथवा स्वयं लिया गया ऋण पुत्र के न होने पर स्त्री दे और अन्य ऋण को नहीं दे। पिता के परदेश जाने पर, मर जाने पर, विपत्ति अथवा असाध्य रोग से ग्रस्त होने पर पुत्र-पौत्रादि ऋण को लौटावें। यदि वे ऋण को गुप्त रखते हैं तो साक्षियों द्वारा प्रमाणित होने पर ऋण को देना चाहिये। उत्तराधिकार प्राप्त धन को लेनेवाला ऋण को लौटावे, स्त्री लेनेवाला ऋण को लौटावे। जिसका धन एकमात्र पुत्र ने प्राप्त किया है वह पुत्र पिता के ऋण को लौटावे। पुत्रहीन ऋणी का धन का हिस्सा पानेवाला धन को लौटावे। भाईयों, पति-पत्नी और पुत्र का बटवारा नहीं होने पर परस्पर प्रतिभू (जमीन) ऋण और साक्ष्य का विधान स्मृतियों में नहीं है अर्थात् वे सम्मिलित परिवार में परस्पर ऋण आदि नहीं ले सकते हैं। प्रातिभाव्य (जमानतदार ऐसा व्यक्ति जो शर्त या विश्वास दिलाता है) दर्शन (आवश्यकता पड़ने पर उपस्थित करने या दिखाने), विश्वास (कि यह देने लायक है) और दान (न देने पर स्वयं देना) के कार्य में प्रातिभाव्य (जमानतदार) होता है। प्रथम दो दर्शन और प्रत्यय के असत्य होने पर राजा धन उनसे दिलावे और तीसरे के असत्य होने पर उसके पुत्रों से भी धन दिलावे। जहाँ दर्शन और प्रत्यय का प्रतिभू मर जाय वहाँ उसके पुत्र उस ऋण को न लौटावे किन्तु जो देने के लिये प्रतिभू हो उसके पुत्र उस ऋण को दे। यदि दानप्रतिभू के अनेक पुत्र हो तो अपने-अपने हिस्से के अनुसार धन दे। यदि सभी पूरा देने को उद्यत हों तो धनी अपनी रुचि के अनुसार किसी से ले। जिस प्रतिभू से राजा ने ऋणदाता का ऋण सबके सामने दिलाया है उसके ऋण लेनेवाला दूना देवे। प्रतिभू के स्त्री और पशु दिलाने की स्थिति में तो बच्चे सहित स्त्री और पशु दे। धान्य होने पर तीनगुना, वस्त्र होने पर चौगुना और रस (तेल-घृतादि) होने पर आठ गुना दिलावे। यदि धन बढ़कर ब्याज सहित दुगुना हो जाता है तो बन्धक नष्ट हो जाता है और जिसका समय निर्दिष्ट है वह उस समय के बीत जाने पर नष्ट हो जाता है किन्तु जिस वस्तु का फल ऋणदाता को सतत प्राप्त होता रहे जैसे खेत आदि वह नष्ट नहीं होता है। गोप्य बन्धक के उपभोग करने पर ब्याज न दे और उपकारक बैल बन्धक की हानि पर भी ब्याज न दे, दैव या राजोपद्रव के बिना ही बन्धक के नष्ट हो जाने या खो जाने पर बन्धक के समान ही वस्तु को देना चाहिये। योग्य और गोप्य बन्धक की सिद्धि स्वीकार करने से होती है और यदि सावधानीपूर्वक रक्षा किया जाता हुआ बन्धक धन और ब्याज की तुलना में न्यूनता अथवा व्यर्थता को प्राप्त हो तो दूसरा बन्धक रखना चाहिये या धनी का धन लौटा देना चाहिये। चारित्रबन्धक (सदाचार के कारण कम मूल्य की वस्तु बन्धक रखकर अधिक धन देना या अधिक मूल्य की वस्तु देकर कम धन देना) होने पर ब्याज के साथ धन दिलावे। सत्यकार होने पर (यह शर्त होने पर कि द्रव्य के दूना होने पर भी बन्धक का नाश नहीं होगा अपितु वह धन लौटाकर बन्धक वापस लिया जायेगा) दूने द्रव्य को दिलावे। ऋणी के बन्धक छुड़ाने आने पर बन्धक (आधि)

लौटा देना चाहिये अन्यथा बन्धक रखनेवाला चोरवत् दण्ड्य होता है। बन्धक रखने वाले के अनुपस्थित रहने पर बन्धक रखनेवाला देय धन को कुल में समर्पित कर बन्धक प्राप्त करे अथवा उस समय का मूल्य निश्चित कर उसे वहीं रहने दे, उसके बाद उसका ब्याज (वृद्धि) नहीं होगा। यदि धन के दूना होने पर भी ऋणी उपस्थित न हो और बन्धक नाश का समय नहीं है, वहाँ भी ऋणी के उपस्थित न होने पर बिना ऋणी के उपस्थित हुये भी धनी साक्षियों की उपस्थिति में उस बन्धक को बेच दे अथवा ब्याज सहित ऋण वसूल कर ले। भोग्य आधि की स्थिति में यदि धन के दूना होने पर बन्धक रखा जाय तो बन्धक से दूना धन धनी द्वारा वसूल कर लिये जाने पर बन्धक छोड़ देना चाहिये। यदि बन्धक प्रारम्भ में रखा गया है तो दैव या राजा के उपाधि के कारण धन के दुगुना होने की स्थिति तक उपभोग न हुआ (और शर्त रही हो कि धन दूना होने पर बन्धक छोड़ दिया जायेगा वहाँ बन्धक से दुगुना धन वसूल कर बन्धक को छोड़ देना चाहिये।

23.6 उपनिधिप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा उपनिधि सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जब किसी पात्र में रखकर बिना रूप संख्या आदि को बताये किसी दूसरे के हाथ में द्रव्य रखा जाय तो वह रखी गयी (निक्षेप) वस्तु उपनिधि कहलाती है और उसको उसी रूप में वापस करना पड़ता है। वह उपनिधि यदि राजा अथवा दैव (जल-प्रवाहादि) तथा तस्करों द्वारा चुरा ली जाती है तो उसे नहीं लौटाया जाता है। यदि मांगने पर न लौटाया गया हो और उसके बाद राजा, दैव अथवा तस्कर द्वारा नष्ट हो गया हो तो उसके समान मूल्य को लौटाना होता है और राजा को उसके बराबर दण्ड देना पड़ता है। यदि उस उपनिधि से कोई स्वेच्छा से जीविका चलाता है अर्थात् उपभोग अथवा व्यवहार करता है तो जितनी उससे उसने वृद्धि की है उसके साथ लौटाना पड़ेगा। जो विधि उपनिधि में है याचित (वही माँग कर ली गयी), वाहित (पुन: किसी दूसरे के यहाँ रख दी गयी), न्यास (गृहस्वामी को बिना दिखाये परिवार के किसी दूसरे व्यक्ति को गृहस्वामी को दे देना- यह कहकर रखी गयी वस्तु) तथा निक्षेप (गृहस्वामी के सामने देना) में भी है।

23.7 साक्षिप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा साक्षी (गवाह) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवक्ता, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, धनयुक्त तथा श्रौत-स्मार्त क्रिया में रस कम से कम तीन साक्षी होते हैं। ये जाति तथा वर्ण के अनुसार अथवा सभी जाति और वर्ण के लिये होते हैं -

तपस्विनो दानशीलाः कुलीनाः सत्यवादिनः।
धर्मप्रधाना ऋजवः पुत्रवन्तो धनान्विताः॥
त्र्यवराः साक्षिणो ज्ञेयाः श्रौतस्मार्तक्रियापराः।
यथाजाति यथावर्णं सर्वे सर्वेषु वा स्मृताः॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ६८-६९

स्त्री, बालक, वृद्ध, जुवारी, मद्यप, उन्मत्त, अभिशप्त, रङ्गा-वतारी, पाखण्डी, कपटलेख लिखनेवाला, विकलेन्द्रिय, पतित मित्र, धन देनेवाला, सहायक, शत्रु, चोर, साहसी (बलपूर्वक अपहरण करनेवाला), प्रत्यक्ष असत्य बोलनेवाला, परिवार द्वारा परित्यक्त आदि साक्षी नहीं होते हैं। दोनों पक्षों के स्वीकार करने पर धर्मज्ञ एक व्यक्ति भी साक्षी होता है किन्तु एकान्त स्थान में की गयी चोरी, कठोर वचन तथा हठपूर्वक किये गये कार्य (साहस) में सभी साक्षी हो सकते हैं। वादी और प्रतिवादी के

समीप स्थित सभी साक्षियों को पूर्व में इस प्रकार बताना चाहिये - "जो साक्षी असत्य बोलता है वह पाप करनेवालों के लोक हैं, जो महापाप करनेवालों के लोक (स्थान) है, आग लगानेवालों के जो लोक हैं और स्त्री तथा बालकों की हत्या करनेवालों के जो लोक हैं उन सबको प्राप्त करता है। तुमने जो सैकड़ों जन्म-जन्मान्तरों में पुण्य अर्जित किया है वह उसका समझो जिसे तुम असत्य को पराजित कर रहे हो।" जो व्यक्ति साक्ष्य स्वीकार कर किसी प्रकार न बोले उससे राजा ब्याज सहित सभी धन ऋण देनेवाले को दिलावे और उसका दशमांश दण्ड के रूप में वसूले। ये सभी धन राजा छियालिसवें दिन दिलावे। जो नीच मनुष्य जानते हुये भी साक्ष्य नहीं देता है वह कूटसाक्षियों के पाप का भागी होता है और उन्हीं के तुल्य उसे दण्ड देना चाहिये। साक्षियों के वचनों में मतभेद होने पर अधिक साक्ष्य को ग्रहण करना चाहिये, बराबर साक्ष्य होने पर गुणियों के साक्ष्य को अङ्गीकार करना चाहिये और गुणियों में भी द्वैध होने पर जो सर्वोत्तम गुणी है उनके साक्ष्य को ग्रहण करना चाहिये। जिसके पक्ष को साक्षि सत्य कहे वह विजयी होता है और जिसके पक्ष को साक्षी असत्य कहे वह पराजित होता है। साक्षियों द्वारा साक्ष्य कह देने पर यदि दूसरे श्रेष्ठ गुण वाले या पहले के साक्षियों के दुगुने व्यक्ति उनके साक्ष्य के उलटा कहे तो पहले के साक्षी कूटसाक्षी होते हैं। जो धन दानादि के द्वारा साक्षियों को नियुक्त करे वह कूटकृत् होता है। ऐसा कूटकृत् तथा कूटसाक्षी ये दोनो विवाद के धन से दुगुना दण्ड प्राप्त करते हैं यदि इनमें कोई ब्राह्मण है तो उसे राज्य से निकाल दे। जो साक्षी होना स्वीकार करके शपथ (साक्ष्य) सुनाये जाने पर रागादि के वशीभूत होकर अन्य साक्षियों से छिपाता है अर्थात् यह कहे कि मैं साक्षी नहीं हूँ उसे विवाद के हारने पर जो दण्ड हो उसका आठगुना दण्ड लिया जाय और यदि ब्राह्मण हो तो देश से निकाल दिया जाय। जहाँ सत्य साक्षी से चारो वर्णों में से किसी का वध होता है वहाँ साक्षी अनृत (मिथ्या) बोले। उसकी शुद्धि के लिये ब्राह्मण सारस्वत चरु का निर्वपण करे।

23.8 लेख्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा लेख्य सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि कोई विषय धनी और ऋणी के मध्य अपनी इच्छा के अनुसार तय हुयी है तो ब्याज की दर क्या है और उसे कब लौटाना है इसे साक्षियों के समक्ष धनी को लिख देना चाहिये और धनी अर्थात् ऋणदाता का भी नामोल्लेख होना चाहिये। सब विषय लिखे जाने के बाद ऋणी अन्त में अपना नाम हाथ से लिखे और यह भी लिखे कि जो इसमें लिखा है वह अमुक व्यक्ति के पुत्र मुझको सम्मत है। साक्षी भी अपने हाथ से अपने पिता के नामोल्लेख के साथ यह लिखे कि यहाँ अमुक व्यक्ति मैं साक्षी हूँ। वे साक्षी संख्या और गुण में सम होने चाहिये और उसके बाद अन्त में लेखक लिखे दोनों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर अमुक का पुत्र मुझ अमुक व्यक्ति ने इसे लिखा है। यदि वह लेख बलपूर्वक या छल, भय, लोभ, क्रोध, मदादि से न लिखकर अपने हाथ से लिखा गया हो तो साक्षियों के बिना भी प्रमाण माना गया है। लिखा गया ऋण तीन पीढ़ी तक ही देय होता है और बन्धक का तभी तक उपभोग होता है जब तक कि वह ऋण लौटा न दिया जाय। लेखक के देशान्तर में होने पर पढ़ने योग्य न रहने पर, खो जाने पर, मिट जाने पर, चुरा लिये जाने पर, जीर्ण हो जाने पर, जल जाने पर अथवा फट जाने पर दूसरा लेख लिखवाना चाहिये। संदिग्ध लेख की शुद्धि अपने हाथ से लिखे, दूसरे लेख से युक्ति-प्राप्ति (देश, काल और व्यक्तियों का द्रव्य से सम्बन्ध), क्रिया (उसके साक्षी का विधान), चिह्न (जो असामान्य चिह्न हो), संबन्ध (धनी और ऋणी का पारस्परिक सम्बन्ध) और आगम (द्रव्य-प्राप्ति का उपाय) हेतुओं से होती है। ऋण धन को लौटा-लौटा कर लेख के पीछे लिख दिया करे,

धनी भी धन प्राप्त कर अपने हाथ से चिह्नित (हस्ताक्षरयुक्त) प्राप्तिपत्र दे। ऋण लौटाकर लेख को काट दे अथवा यदि लेख नष्ट हो गया हो तो ऋणत्व-निवृत्तिसूचक अन्य लेख लिखवा दे। जो ऋण साक्षियों के सामने लिखा गया हो उन्हें साक्षियों के सामने ही लौटाना चाहिये।

23.9 दिव्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दिव्य (चमत्कारिक) विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार तुला, अग्नि, जल, विष, कोष में विशुद्धि (संदेह की निवृत्ति) के लिये पाँच दिव्य प्रयोग किये जाते हैं। इनका प्रयोग महाभियोगों में होता है और तभी होता है जब वादी भी शीर्षकस्थ जय-पराजय का भागी हो। अभियोक्ता और अभियुक्त की रुचि के अनुसार दोनो में किसी के लिये भी किया जाता है अथवा वे दोनों ही जय-पराजय स्वीकार करे। राजद्रोह और ब्रह्महत्यादि पातक में बिना जय-पराजय के भी इसे प्रयुक्त किया जाना चाहिये।

23.9.1 दिव्यमातृका -

दिव्यसाक्ष्य अथवा शपथलेनेवालों को पहले दिन उपवास रखकर दूसरे दिन प्रात: सवस्त्र स्नान कराकर बुलावे तथा राजा एवं ब्राह्मण के सामने सभी दिव्यों को करावे। स्त्री, बालक, वृद्ध, अन्धा, लंगड़ा, ब्राह्मण एवं रोगी के लिये तुला, क्षत्रिय के लिये अग्नि, वैश्य के लिये जल और शूद्र के लिये सात यव के बराबर विष का दिव्य करावे। सहस्रपण से कम के बाद में तप्त फाल, विष या तुला दिव्य न करावे। राजद्रोह तथा महापातक में ये सभी दिव्य सदा पवित्रता के साथ करे।

23.9.2 घटविधि -

तौल में निपुण व्यक्तियों द्वारा अभियुक्त को तुला पर चढ़ावे और उसके वजन के तुल्य मिट्टी आदि वस्तु हो उसके बराबर रेखा बनाकर उसे तुला से उतार ले। उसके बाद दिव्य करनेवाला तुला से इस प्रकार प्रार्थना करे "हे तुले ! तुम सत्य का स्थान हो। पूर्वकाल में देवताओं ने तुम्हारा निर्माण किया है। हे कल्याणि ! अत: तुम सत्य बोलो। मुझे संदेह से मुक्त करो। हे मात: ! यदि मैं पापी हूँ तो नीचे ले जाओ और यदि शुद्ध हूँ तो ऊपर ले जाओ।

23.9.3 अग्निविधि -

अग्नि का दिव्य करनेवाले के दोनो हाथो में ब्रीहि मलवा कर और तिल, व्रणचिह्न आदि स्थानों में अलक्तक का चिह्न लगाकर पीपल के सात पत्तों को सात सूतों से वेष्टित करते हुये इस प्रकार से प्रार्थना करे "हे अग्नि आप सभी प्राणियों के भीतर सञ्चार करते हैं। हे पावक, सर्वज्ञ पुण्य पाप के रूप में सत्य को कहें।" उसके ऐसा कहने पर उसके दोनो हाथो पर पचास पल के बराबर अग्निवर्ण लाल जलता हुआ लौहपिण्ड दोनों हाथों पर रखे। वह उस लौहपिण्ड को लेकर सात मण्डलों पर चले। एक मण्डल सोलह अङ्गुल का होता है और दो मण्डलों के मध्य इतना ही अन्तर होता है। तदनन्तर अग्नि को छोड़कर ब्रीहि को हाथों पर मले। यदि न जला हो तो शुद्धि को प्राप्त करता है। लौहपिण्ड के बीच में गिर जाने पर या सन्देह होने पर दुबारा पिण्ड लेकर चले।

23.9.4 उदक विधि -

हे वरुण ! आप सत्य से मेरी रक्षा करे इस वचन से जल को अभिमन्त्रित कर नाभि तक जल में खड़े व्यक्ति की कमर पकड़कर जल में प्रवेश करे। उसके डुबकी लगाने के साथ ही छोड़े गये बाण को लेने के लिये एक तीव्र गति वाला व्यक्ति जाये। यदि बाण को ले आने के समय तक वह डुबकी लगाये रए तो वह शुद्ध होता है।

23.9.5 विषविधि -

हे विष ! तुम ब्रह्मा के पुत्र तथा सत्य धर्म में स्थित हो। इस अभिशाप से मेरी रक्षा करो और सत्य के द्वारा मेरे लिये अमृत बनो। इस प्रकार कहकर हिमालय पर उत्पन्न शृङ्ग के विष को खा जाय। जो व्यक्ति विष को बिना उसके प्रभाव प्रकट हुये ही पचा जाय वह शुद्ध होता है।

23.9.6 कोशविधि -

दुर्गा, आदित्य उग्र देवों की पूजा कर उनके स्नानोदक को लावे। उसे दूसरे पात्र में रखकर तीन अञ्जलि दिव्यकरनेवाले को पिलावे। इस दिव्य को करनेवाले जिस व्यक्ति पर चौदह दिनों तक राजकृत या दैवकृत घोर विपत्ति नहीं पड़ती वह निस्सन्देह शुद्ध है।

23.10 दायविभागप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दायविभाग सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि संपत्ति का विभाग पिता करे तो वह अपनी इच्छानुसार करे। ज्येष्ठ पुत्र को श्रेष्ठ भाग मझले को मध्यम भाग और छोटे को छोटा भाग देकर विभाजन करे अथवा सभी को बराबर का हिस्सा दे -

विभागं चेत् पिता कुर्याद् इच्छया विभजेत् सुतान्।
ज्येष्ठं वा श्रेष्ठभागेन सर्वे वा स्यु: समांशिन:॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या ११४

यदि पिता पुत्रों में समान हिस्सा करे तो उन पत्नियों को समान भाग दे जिनके श्वसुर अथवा पति के द्वारा स्त्री धन नहीं मिला है। यदि पुत्र अर्थार्जन में असमर्थ है और अपना भाग नहीं लेना चाहता तो पिता उसे कुछ हिस्सा देकर विभाग करे। यदि पिता द्वारा किया गया न्यूनाधिक विभाग धर्मशास्त्रानुसार है तो वह अपरिवर्तनीय होता है। यह सामान्य नियम पुत्र के अर्थार्जन में समर्थ और पैतृक दाय में कामना न करने पर ही लागू होता है। पिता के कुपित होकर न देने इत्यादि कारणों पर यह मान्य नहीं है। माता और पिता की मृत्यु के बाद सभी पुत्र पिता की संपत्ति एवं ऋण का बराबर - बराबर विभाग कर ले। माता का धन माता का ऋण चुकाने के बाद पुत्रियाँ बाँट ले और पुत्रियों के न होने पर पुत्र ले। माता और पिता के द्रव्य के बिना विनियोग के जो धन स्वयं कमाया गया धन, मित्र से मिला धन और विवाह में मिले धन का भाइयों में हिस्सा नहीं होता। पितृ परम्परा से प्राप्त धन जो किसी अन्य ने हरण कर लिया हो, वह भी केवल उसे छुड़ानेवाले का होता है। उसे दायादों को न दे और स्वयं की विद्या से अर्जित धन को भी दायादों को न दे। विभाजन से पूर्व भाइयों के एक में रहने पर साधारण धन में कृषि-वाणिज्यादि के द्वारा हुयी वृद्धि में सभी भाइयों का समान भाग होता है। पितामह के धन में पिता के के भाग के अनुसार ही पौत्र के भाग का निर्धारण होता है। जो भूमि पितामह द्वारा अर्जित है और जो कर, चुंगी तथा स्वर्ण-रजतादि पितामह द्वारा अर्जित है उसमें भी पिता के समान अर्थात् अंशानुसार पौत्र का भाग होगा। पुत्रों में संपत्ति का विभाग होने बाद यदि सवर्णा स्त्री से पुत्र होता हो तो वह भी अपने भाग का अधिकारी होता है। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों के विभाजन के समय यदि माता के गर्भ का ज्ञान हो तो भी उस पुत्र के उत्पन्न होने पर आय तथा व्यय की राशि पर उस पुत्र का भाग होगा। माता-पिता जिस पुत्र को धर्मानुसार जो धन दे दे वह उसका होता है। पिता की मृत्यु के अनन्तर पुत्रों में विभाजन होने पर माता भी यदि स्त्री धन नहीं मिला है तो समान अंश की अधिकारिणी होती है। पिता की मृत्यु के बाद भाइयों में विभाजन होने पर संस्कृत भाई असंस्कृत भाइयों का संस्कार करावे। यदि बहन का विवाह नही हुआ है तो सभी भाई अपने अंश से चौथाई देकर विवाह करावे। ब्राह्मण की विभन्न वर्णों की स्त्रियों से उत्पन्न पुत्र

क्रमश: चार, तीन, दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। क्षत्रिय की तीन, दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं तथा वैश्य के दो और एक भाग के अधिकारी होते हैं। ब्राह्मणादि वर्णों को अपने से नीचे के वर्णों में ही विवाह का अधिकार है, अत: ऐसी पत्नियों से उत्पन्न सन्तानों के विभागों का यहाँ विवरण सम्प्राप्त होता है। विभाग के बाद यदि कुछ धन आपस में छिपाकर रखा दिखायी पड़े तो सभी भाई उसे समान भाग से बाँट ले। यह नियम है। पुत्रहीन व्यक्ति देवर इत्यादि द्वारा दूसरे की स्त्री में नियोग द्वारा उत्पादित पुत्र दोनों की संपत्ति का अधिकारी और पिण्डदाता होता है। शूद्र द्वारा दासी में भी उत्पन्न पुत्र पिता की इच्छा से संपत्ति का भागीदार होता है। पिता के मर जाने पर परिणीता से उत्पन्न हुये जो दासीपुत्र के भाई उसे आधा भाग दे। यदि कन्यायें और उनके पुत्र न हो तो सभी संपत्ति वह प्राप्त करता है किन्तु कन्याओं तथा पुत्र के होने पर वह आधी संपत्ति प्राप्त करेगा। वानप्रस्थ, यति तथा ब्रह्मचारी की संपत्ति के अधिकारी उलटे क्रम से आचार्य, तच्छिष्य तथा एकतीर्थी अर्थात् एकाश्रमी धर्मभ्राता होता है। संसृष्टी अर्थात् पहले विभक्त किन्तु बाद में धन मिलाकर रहनेवाले व्यक्तियों की संपत्ति संसृष्टी ले। सोदर संसृष्टी का धन सोदर संसृष्टी ले। यदि सोदर संसृष्टी के मरन के बाद उसका पुत्र उत्पन्न हो तो संपत्ति ले। मृतक संसृष्टी की सन्तान न होने पर संसृष्टी उसी की संपत्ति ले। यदि दूसरे उदर से उत्पन्न सौतेला भाई संसृष्टी हो तो धन ले, यदि सौतेला भाई संसृष्टी न हो तो धन न ले। यदि एक ही माता से उत्पन्न भाई हो तो असंसृष्टी होने पर भी धन पाता है। मृतक व्यक्ति के सगे भाइयों में भी धन का विभाग होवे। नपुंसक, पतित, पतित से उत्पन्न पुत्र, पङ्गु, पागल, जड, मूर्ख (हिताहित जानने में असमर्थ), अन्धा, न ठीक होनेवाले रोग से ग्रस्त इनका संपत्ति में अधिकार नहीं होता। केवल वे भरण-पोषण के अधिकारी हैं। इन पूर्वोक्त भरण-पोषण के अधिकारियों के औरस या क्षेत्रज पुत्र निर्दोष पहले के दोषों से विरहित है तो संपत्ति के अंश का भागीदार होते हैं। इन यदि इन पूर्वोक्त नपुंसकादि की कन्यायें हों तो उनका भी जब तक वे पतिगृह में चली जाय भरण-पोषण और विवाह-संस्कार करना चाहिये। इन क्लीबादि की अपुत्र स्त्रियाँ भी सदाचारिणी होने पर भरण-पोषण की अधिकारिणी हैं। यदि व्यभिचारिणी तथा प्रतिकूल आचरण करनेवाली हैं तो उन्हें निकाल देना चाहिये। पिता, माता, पति और भाई द्वारा दिया गया धन, विवाह के समय अग्नि के समीप प्राप्त धन तथा दूसरा विवाह करते समय प्रथम पत्नी के परितोषार्थ दिया गया धन इत्यादि स्त्रीधन कहे गये हैं। स्त्री के माता पिता के बन्धुओं द्वारा दिया गया धन, परिणय के शुल्क के रूप में दिया गया धन, विवाह के बाद पति तथा पितृकुल से प्राप्त धन भी स्त्री-धन होता है और ऐसी स्त्रीधनवाली स्त्री के बिना सन्तान के मर जाने पर उसके बन्धु पति आदि उस स्त्रीधन को प्राप्त करते हैं। यदि वाग्दत्ता कन्या विवाह के पूर्व मर जाये तो वर ने जो शुल्क आदि दिया है वह दोनों पक्ष का व्यय कर ले ले। दुर्भिक्ष में, धर्मकार्य में, रोग में और बन्दी होने पर पति जो स्त्रीधन ले ले तो वह पुन: स्त्री को लौटाने का भागी नहीं होता। पति यदि पहली स्त्री के रहते दूसरी स्त्री से विवाह करता है तो दूसरे विवाह में जितना धन व्यय हुआ है उतना पहली स्त्री को दे। यदि पहली स्त्री को स्त्रीधन मिला हो तो दूसरे विवाह में व्यय हुये धन का आधा ही दे। विभाग का हिस्सा छिपाने अर्थात् अस्वीकार करने पर जाति के लोगो, साक्षियों, लेख और अलग किये क्षेत्र और गृह से विभाग जानना चाहिये अर्थात् इनसे विभाग का निर्णय करना चाहिये।

23.10.1 पुत्रों के प्रकार -

सवर्ण पत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस होता है। उसी के समान पुत्रिका (भाई विहीन कन्या) का पुत्र होता है। पत्नी में सगोत्र या अन्य से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज होता है। घर में निम्न जाति के पुरुष से प्रच्छन्न रूप

से उत्पन्न पुत्र गूढज माना गया है। कन्यावस्था में अविवाहित होने पर पितृगृह में पुत्र हो तो वह कानीन होता है और मातामह का होता है और यदि कन्या विवाहिता है और पितृगृह में पुत्र को जन्म देती है तो वह पति का होगा ऐसा मनु का तात्पर्य है। अक्षत योनि (बिना किसी पुरुष के संपर्क वाली) अथवा क्षत (पूर्व में पुरुष के संपर्कवाली) स्त्री में (दूसरे विवाहेतर) पुरुष से उत्पन्न पुत्र पौनर्भव होता है। जिसे माता या पिता दे दे वह दत्तक होता है। माता-पिता या उनमें से किसी के द्वारा विक्रय किया गया पुत्र क्रीत होता है। माता-पिता से विहीन पुत्र को स्वयं पुत्र बना लेने पर वह स्वयंकृत पुत्र होता है और जो पुत्र स्वयं को किसी का पुत्र बना ले वह दत्तात्मा पुत्र होता है। जो विवाह के समय ही गर्भ में रहा हो वह सहोढज पुत्र होता है। माता-पिता द्वारा त्यक्त होने पर जो पुत्र स्वीकार किया जाता है वह अपविद्ध पुत्र होता है। इन पुत्रों में पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद वाले पिण्ड देनेवाले तथा संपत्ति के भागीदार होते हैं। यह विधि समान जाति के पुत्रों में पूर्व और पर की है। जिस व्यक्ति के पूर्वोक्त बारह पुत्रों में से कोई भी न हो उस दिवंगत व्यक्ति के पुत्र नहीं होने पर पत्नी, पुत्रियाँ, माता-पिता, भाई, भाईयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न, बन्धु, शिष्य, ब्रह्मचारी में पूर्व-पूर्व के अभाव में बाद के क्रम से उसकी संपत्ति के अधिकारी होते हैं। यह नियम सभी वर्णों के लिये है।

23.11 सीमाविवादप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा सीमा सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार खेत अथवा दो गाँवों के सीमा विवाद में सामन्त चारो ओर के गाँवों के लोग वृद्ध व्यक्ति, गोप, सीमा के किसान, सभी वनचारी, व्याधादि, उन्नत भूमि, राख, धान की भूसी, वट आदि वृक्ष, पुल, वल्मीक, गड्ढा, हड्डियों अथवा पत्थर आदि से पूर्व में निर्दिष्ट सीमा को निश्चित करे। अथवा ये व्यक्ति इन वस्तुओं से सीमा को निर्धारित करे। यदि कोई चिह्न अवशिष्ट न हो तो सामन्त, आस-पास के गावों के चार, आठ, दश की सम संख्या के लोग शिर पर मिट्टी का ढेला रखकर लाल माला और वस्त्र पहन कर सीमा का निर्धारण करे। इन सामन्तादि के असत्य बोलने पर राजा उन्हें मध्यम साहस चालीस पण से अधिक तथा पाँच सौ पण से कम का दण्ड दे। सीमा के जाननेवाले और चिह्नों के अभाव में राजा ही सीमा का निर्णायक होता है। बाग, मकान, ग्राम, पानी का स्थान, उद्यान, घर इनमें भी सीमा निर्धारण की यह विधि है। वर्षा के जल-प्रवाह आदि में भी यही विधि है। मर्यादा सीमा, पेड़ को तोड़ने सीमा को पार करने और खेत के हरण कर लेने पर क्रमश: अधम, उत्तम और मध्यम साहस का दण्ड होता है। थोड़ी बाधा होने पर अल्प भूमि जाने पर कल्याणकारी सेतु की निर्माण को न रोके। दूसरे की भूमि लेकर कूप निर्माण होने पर भूमि तो कम लगती है किन्तु जल अधिक प्राप्त होता है। जो खेत के स्वामी को बिना सूचित किये उसके खेत में सेतु आदि बनाता है ऐसे सेतु के बनने पर खेत का स्वामी ही उसके उपभोग का अधिकारी होता है। उसके न होने पर राजा अधिकारी होता है। जो खेत के स्वामी से खेत लेकर एक बार जोतकर पुन: न तो जोतता है, न दूसरे से जुतवाता है उसे उस जोत का फल देकर खेत को दूसरों को खेती के लिये दे।

23.12 स्वामिपालविवादप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्वामिपाल सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि भैंस से खेत की फसल का नुकसान हुआ है तो भैंस के स्वामी से आठ माषा दण्ड ले। गाय के चरने पर उसका आधा अर्थात् चार माष दण्ड ले और बकरा, भेड़ के चरने पर उसका अधा अर्थात् दो माष दण्ड ले। पशु के खेत चरकर खेत में ही बैठने पर इसका दूना दण्ड होता है। बाड़े में प्रवेश करने पर भी पूर्ववत् दण्ड दे। गधे और ऊँट का दण्ड भैंस के समान है। गाय इत्यादि के चरने-

बैठने इत्यादि से जितना अन्न नष्ट हो उतना गाँव के सभ्यों द्वारा गाय के स्वामी से खेत के स्वामी को दिलवाना चाहिये। चरवाहों को पीटना चाहिये। गोमी (गाय के स्वामी) को पूर्वोक्त दण्ड देना चाहिये। मार्ग तथा ग्राम के समीपवर्ती खेत में पशुओं के बाड़े से सटे खेत में बिना चाहे पशुओं के द्वारा चरे जाने पर कोई दोष नहीं होता। जान-बूझकर इनमें चराने वाला चोर के समान दण्डनीय होता है। साड़ (वृषोत्सर्गादिविधान से या देवता के उद्देश्य से छोड़े गये पशु), दश दिन के अन्दर व्याई गाय और अपने समुदाय से भटके पशु को छोड़ देना चाहिये दण्ड के लिये नहीं पकड़ना चाहिये। जिसका कोई स्वामी न हो तथा जो पशु, देव या राजा द्वारा पीड़ित हो ऐसे पशु को खेत चरने पर भी छोड़ देना चाहिये। गोप (चरवाहे) को जितनी संख्या और स्वरूप के पशु प्रात:काल गोस्वामी को चराने के लिये दे चरवाहा उसी रूप में सायंकाल लौटावें। चरवाहों के प्रमाद से मरे या खोये हुये पशुओं का मूल्य चरवाहा वेतन में से लौटावे। चरवाहे के दोष से पशुओं के विनाश होने पर चरवाहे से साढ़े तेरह पण दण्ड स्वामी को दिलवावे। ग्राम के लोगो की इच्छा से, भूमि की अल्पत्व-महत्त्व की अपेक्षा से या राजेच्छा से गोचर भूमि को छोड़ना चाहिये। ब्राह्मण, तृण, इन्धन और पुष्प सभी स्थानों से सदा बिना बाधा के ले। ग्राम के चारों ओर एक सौ धनुष का क्षेत्र खाली छोड़े। खर्वट (प्रचुर कण्टक वाले गाँव) के चारों ओर दो सौ धनुष क्षेत्र छोड़े और नगर के चारों ओर चार सौ धनुष क्षेत्र छोड़े।

23.13 स्वामिविक्रयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्वामी द्वारा विक्रय सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार अपनी वस्तु को किसी के पास अन्य अनधिकारी द्वारा बेची गयी देखे तो ले ले। अप्रकाशित (चोरी से) खरीदने में खरीदनेवाले का दोष होता है। हीन व्यक्ति (अस्वामी) से एकान्त में, कम मूल्य में और असमय (रात्रि आदि में) क्रय करनेवाला तस्कर होता है। अपनी खोयी या चोरी गयी वस्तु को देखकर हर्ता क्रेता को राजाधिकारियों से पकड़वाये। (उनके पकड़वाने में राजा-धिकारियों की अनुपस्थिति के कारण) देश और काल की बाधा पड़ने (अर्थात् किसी दूसरे स्थान पर भाग जाने या देर होने की आशंका) पर स्वयं पकड़कर (दण्डाधिकारी) को दे दे। स्वामी आगम (लेख) और उपभोग से नष्ट वस्तु पर अपना स्वामित्व सिद्ध करे। उसके द्वारा अपना अधिकार प्रमाणित न करने पर राजा को उस वस्तु के मूल्य का पञ्चमांश दण्ड दे। जो अपनी चोरी गयी या खोई वस्तु को बिना राजा के सूचित किये ही दूसरे के हाथ से ले लेता है उसे राजा को छियानबे पणों का दण्ड देना होता है। शुल्क लेनेवाले या स्थानपालों द्वारा खोई या चुराई कोई वस्तु राजा को देने पर वस्तु का स्वामी एक वर्ष के भीतर उसे राजा से ले ले। इसके भीतर न लेने पर इसके बाद उसे राजा ले ले। एक खुरवाले (अश्व आदि) के मिलने पर उसका स्वामी राजा को चार पण (रक्षणादि के निमित्त शुल्क रूप में) दे, मनुष्य के मिलने पर पाँच पण दे, भैंस, ऊँट और गाय के मिलने पर दो-दो पण दे और भेड़ मिलने पर एक चौथाई पण दे।

23.14 दत्ताप्रदानिकप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दान-प्रदान सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार दान अपने कुटुम्ब के अविरोध से दे अर्थात् उतना ही दे जिससे उनके भरण-पोषण में बाधा न हो। स्त्री और पुत्र दान में न दे। वंश (पुत्र-पौत्र) होने पर सर्वस्व न दे और जो वस्तु दूसरे के देने की प्रतिज्ञा कर दी है वह फिर दूसरों को न दे -

स्वं कुटुम्बाविरोधेन देयं दारसुताद् ऋते।
नान्वये सति सर्वस्वं यच् चान्यस्मै प्रतिश्रुतम्॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १७५

प्रतिग्रह (दान) प्रकास में सबके सामने लेना चाहिये। विशेष रूप से स्थावर (भूमि, वृक्ष) का प्रकाश में लेना चाहिये (जिससे कि आगे स्वामित्व का कोई विवाद न हो) जो वस्तु देने का संकल्प करे वह अवश्य दे और देकर फिर न लौटाये।

23.15 क्रीतानुशयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा क्रय सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार धान्य का बीज, लोहा, ढोनेवाला बैल आदि पशु, रत्न, स्त्री (दासी), दूध देनेवाले भैंस आदि पशु, और पुरुष (दास) का परीक्षण अच्छा-बुरा होने का क्रमश: दश, एक, पाँच दिन, एक सप्ताह, तीन दिन और एक पखवारा होता है अर्थात् इतने दिनों के भीतर ही परीक्षण में शुद्ध होने पर तत्तत् पदार्थ लौटाये जा सकते हैं। अग्नि में तपाने पर सोना कम नहीं होता, सौ पल रजत में दो पल कम हो जाता है, पीतल सौ पल में आठ पल कम हो जाते हैं, ताम्र में पाँच पल कम हो जाता है और लोहा दस पल कम हो जाता है। ऊन और कपास के मोटे सूत में (कम्बलादि के निर्माण में) सौ पलों में दश पल की वृद्धि होती है, मध्यम श्रेणी के सूत में पाँच पल और पतले (सूक्ष्म) सूत से बने वस्त्र में सौ पल में तीन पल की वृद्धि होती है। जिन वस्त्रों में चक्र, स्वस्तिक आदि की कढ़ाई होती है और जिन चादर आदि में रोयें बाँधे जाते हैं उनमें बार-बार छेद करने आदि से तीसवें भाग की कमी होती है। कौशेय (रेशमी) और वल्कल में न कमी होती है और न वृद्धि। (द्रव्य के नष्ट हो जाने पर या ह्रास होने पर) देश, काल, उपभोग तथा नष्ट हुये द्रव्यों की सारासारता को परीक्षित कर द्रव्य के विषय-विशेषज्ञ जो मूल्य लगावे वह (नाश करनेवाला शिल्पी आदि) दे।

23.16 अभ्युप्रेत्याशुश्रुषाप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दास सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार बलपूर्वक दास बनाया गया या चोरों द्वारा विक्रय के द्वारा दास बनाया गया दास दासत्व से मुक्त हो जाता है अर्थात् राजा उसे मुक्त करा दे। सभी प्रकार के दास स्वामी के प्राण बचाने पर दासत्व से मुक्त हो जाते हैं -

बलाद्दासीकृतश्चौरैर्विक्रीतश्चापि मुच्यते।
स्वामिप्राणप्रदो भक्तत्यागात् तन्निष्क्रयादपि॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १८२

(बिना समय की सीमा के जो दास हैं उनकी मुक्ति) खोये हुये द्रव्य को लौटाने पर होती है और ऋण चुकाकर दास बनाये गये या खरीदे गये दासों की मुक्ति उस द्रव्य को लौटाने पर होती है। संन्यास से च्युत व्यक्ति जीवन-पर्यन्त राजा का दास रहता है। दासत्व वर्णों में अनुलोम क्रम से होता है (ब्राह्मण का क्षत्रिय-वैश्यादि क्रम से होता है, प्रतिलोम क्रम से नहीं (क्षत्रिय का ब्राह्मण, वैश्य का क्षत्रिय आदि क्रम से नहीं) अर्थात् उच्च वर्ण का दास निम्न वर्ण वाला नहीं होगा। निम्नवर्णवाले का दास उच्चवर्णवाला नहीं होगा। शिष्य अपने गुरु के यहाँ निवास की अवधि निश्चित होने पर और विद्या उससे पूर्व समाप्त करने पर भी उस शिष्य विद्या का फल गुरु को देते हुये तथा गुरु से भोजन प्राप्त कर वहाँ निवास करे।

23.17 संविव्द्यतिक्रमप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा धर्म सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार राजा अपने नगर में स्थान (निवासोपयुक्त गृहादि) बनाकर वहाँ ब्राह्मणों को बसावे और उन त्रैविद्य (तीनो वेदों के ज्ञाता) ब्राह्मणों को वृत्ति देकर यह कहें कि आप अपने धर्म का पालन करें। अपने धर्म के अविरुद्ध (अनुकूल) जो सामयिक धर्म हो तथा जो राजा द्वारा निश्चित किया धर्म हो उसकी रक्षा (पालन) करे। जो गण (समूह अथवा समाज) के द्रव्य का हरण करे या (राजा या समाज द्वारा निश्चित) समय (व्यवस्था) का उल्लङ्घन करे, राजा उसके सर्वस्व का हरण कर राज्य से बाहर निकाल दे। जो व्यक्ति समूह (गण) के हित का वचन कहते हैं उनके वचन का सभी को पालन करना चाहिये। जो व्यक्ति उसके विपरीत (समूह के हितवादी के वचन का अव-रोधक) हो उसे (राजा द्वारा) प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये। समूह के कार्य के लिये आये हुये लोगों का कार्य कर राजा उन्हें दान-मान-सत्कार से सत्कृत कर विदा करे। समूह के कार्य के लिये भेजा गया व्यक्ति जो कुछ (उस कार्य-संपादन के अवसर पर) प्राप्त करे उसे ले आकर (समूह को) समर्पित कर दे। यदि वह स्वयं उस प्राप्त वस्तु को नहीं देता तो उससे ग्यारह गुना दण्ड लेना चाहिये। श्रौत और स्मार्त धर्म के विशेषज्ञ, पवित्र और निर्लोभी व्यक्तियों को समूह के कार्य का विचारक बनाना चाहिये। ऐसे धर्मज्ञ समूह के हित बोलने वाले लोगों के वचन के समूह के सभी व्यक्तियों को मानना चाहिये। श्रेणी (एक शिल्प या व्यापार से जीविका चलानेवाले), नैगम (वेद को आप्त प्रमाण माननेवाले पाशुपतादि), पाखण्डी (वेद का प्रामाण्य न माननेवाले सौगत आदि) और गण (अस्त्र आदि विद्या से जीविका चलानेवाले) के विषय में भी यही नियम है। राजा इनके भेद (पारस्परिक धर्म) की रक्षा करे और इनके पूर्व की वृत्ति की रक्षा करे। जो शास्त्रविरुद्ध पक्ष है उनकी भी तत्तद् रूप से रक्षा होनी चाहिये।

23.18 वेतनादानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा वेतन सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार वेतन लेकर कर्म का त्याग करनेवाले से वेतन का दुगुना धन दिलाये। यदि वेतन नहीं लिया हो तो उसके बराबर धन दे। नौकर (जिस कार्य में नियुक्त है उस कार्य के सहायक हल फावड़ा इत्यादि) उपस्करों की यत्नपूर्वक रक्षा करे -

गृहीतवेतनः कर्म त्यजन् द्विगुणम् आवहेत्।
अगृहीते समं दाप्यो भृत्यै रक्ष्यः उपस्करः॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या १९३

जो स्वामी (व्यापारी, गोस्वामी अथवा भूपति) भृत्य का बिना वेतन निश्चित किये काम लेता है, राजा को उससे वाणिज्य, पशु और अन्न से हुये लाभ का दसवाँ हिस्सा भृत्य को दिलाना चाहिये। जो भृत्य देश और काल का अतिक्रमण कर लाभ या हानि करावे वहाँ हानि होने पर तो स्वामी की इच्छा है कि (वेतन में उसे काटे या न होने पर) लाभ होने पर अधिक दे। यदि एक ही कार्य दो (अधिक व्यक्तियों) द्वारा किया जा रहा हो और (रोगादि के कारण) संपन्न न हुआ हो तो जितना जिससे कार्य किया है उतना वेतन उसे दिया जाय और कार्य पूर्ण होने पर जैसा वेतन निश्चित किया गया हो उतना दिया जाय (कर्मानुरूप न दिया जाय)। जिस वाहक से बिना राजा और दैव के उपद्रव के भाण्ड नष्ट हो जाय उसे भाण्ड दिलावे। (मङ्गलकार्य के) प्रस्थान में जो विघ्न करे (अर्थात् पहले स्वीकार कर फिर समय पर न जाय) उससे वेतन का दूना धन (दण्ड) दिलावे। प्रस्थान प्रारम्भ होने पर जो स्वीकृत काम छोड़ दे उससे मजदूरी का सातवाँ भाग दण्ड में दिलावे, जो मार्ग में छोड़े उससे चौथा भाग दिलावे,

जो आधे मार्ग में छोड़े उससे पूरी मजदूरी दिलावे और जो उससे काम छुड़वाता है, उस मालिक से भी पूरी मजदूरी भृत्य को दिलवाये।

23.19 द्यूतसामाह्वयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा द्यूत सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार द्यूत में सभिक को (जुआ खिलानेवाला) सौ प्रतिशत की वृद्धि होने पर धूर्त जुआरी से पाँच प्रतिशत ले और अन्य से दश प्रतिशत ले। वह सभिक (जुआ खिलानेवाला) राजा से सम्यक् रक्षित होने पर राजा को यथोचित भाग दे। जीते हुये धन को हारे हुये धन से निकाल कर जीतनेवाले को दिलावे। स्वयं क्षमाशील होकर अन्य लोगों से सत्य वचन कहे। राजा अपना अंश प्राप्त करने पर ज्ञात जुआरियों के समूह में सभिक के निरीक्षण में जीता हुआ धन जीतनेवाले को दिलावे। अन्यथा (संरक्षित समूह न होने पर) न दिलावे। वे (जुआ खेलनेवाले ही जुये के) नियम द्रष्टा और साक्षी होते हैं। कपटपूर्ण पाशे से खेलनेवाले जुआरी लोगों को राजा चिह्नित कर (दाग कर) राज्य से बाहर निकाल दे। चोरों के पहचान के निमित्त द्यूत को एक प्रधान व्यक्ति (राजा द्वारा) नियुक्त कर खेलना चाहिये। प्राणियों (पहलवानों, भेड़े, भैसा, मुर्गा आदि) आदि के द्यूत में भी यही (शतिक वृद्धि) वाला नियम होता है।

23.20 वाक्पारुष्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा वाक्पारुष्य (अपशब्द) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो किसी विकलेन्द्रिय (लंगड़ा, लूला इत्यादि) एवं रोगो की सत्य या असत्य या अन्यथा रूप से आक्षेप करे उससे साढ़े तेरह पण दण्ड लेना चाहिये। तुम्हारी बहन या माँ के पास मैं जाने वाला (जार) हूँ ऐसी गाली देनेवाले को राजा पच्चीस पण दण्ड लगावे। (अपने से) अधम स्त्री को गाली देने में आधा दण्ड ह्होता है और उत्तम स्त्री को गाली देने में दूना दण्ड होता है। राजा को दण्ड का विधान ऊपर और नीचे की जाति और वर्ण के क्रम से दण्ड प्रवर्तित करना चाहिये। वर्णों की प्रतिलोमता अर्थात् नीचे वर्णवाले के द्वारा अपवाद लगाने पर क्रमश: दुगुना और तिगुना दण्ड होता है। अनुलोम अर्थात् ऊँचे द्वारा नीचे को अपवाद लगाने पर उससे आधे, आधे की कमी से दण्ड लगता है। बाँह, गर्दन, नेत्र, कमर तोड़ने की वाचिक धमकी देने पर सौ पण का दण्ड लगता है और पैर, नाक, कान, हाथ आदि की धमकी देने पर उसका आधा अर्थात् पचास पण का दण्ड होता है। यदि दुर्बल व्यक्ति (रोगी आदि) ऐसा वचन कहता है तो उससे दश पण का दण्ड ले और शक्तिशाली ऐसा कहता है तो (उससे पूर्वोक्त सौ पण दण्ड लेकर) उससे (ऐसा न करने के लिये) जमानतदार भी ले। (ब्रह्महत्यादि) पतित करानेवाले आक्षेप लगाने पर मध्यम साहस का दण्ड लगावे और (गोहत्यादि) उपपातक का आक्षेप करने पर प्रथम (अर्थात् अधम) साहस का दण्ड लगावे। तीनो वेदों के विद्वानों, राजा और देवता पर आक्षेप करनेवाले पर उत्तम साहस का दण्ड लगावे। जाति और समूह पर आक्षेप करनेवाले से मध्यम साहस का दण्ड ले और ग्राम और देश पर आक्षेप करनेवाले से अधम साहस का दण्ड ले।

23.21 दण्डपारुष्यप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा दण्डपारुष्य सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार यदि कोई बिना साक्षी के (एकान्त में) मारे जाने का आरोप लगावे तो मरने के चिह्नों, युक्तियों और आगम (जनप्रवाद) आदि से व्यवहार (वाद) का निर्णय करना चाहिये क्योंकि (ऐसी स्थिति में) जाली चिह्नों की शंका रहती है-

असाक्षिकहते चिह्नैर्युक्तिभिश्चागमेन च ।
द्रष्टव्यो व्यवहारस्तु कूटचिह्नकृतो भयात् ॥
याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २१२

भस्म, कीचड़ और धूल फेकने पर दश पण का दण्ड होता है। अमेध्य (अश्रु, श्लेष्म, नख, केश, कान की मैल और जूठा) और मुख से निकाले जल का स्पर्श कराने पर दुगुना (बीस पण) का दण्ड होता है। यह नियम समान वर्ण पर है। परस्त्री तथा अपने से उत्तम वर्ण पर ये फेंकने पर दूना दण्ड होता है। अपने से हीन वर्ण पर यह फेंकने पर आधा दण्ड होता है। मोह (चित्तवैक्लव्य) और मद (मदपान में) यह दण्ड नहीं होता। यदि अब्राह्मण ने ब्राह्मण को पीड़ा दी है तो उसके उस अङ्ग को काट देना चाहिये जिससे उसने ब्राह्मण को पीड़ा दी है। (मारने के लिये शस्त्र आदि उठाने पर) प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये और मारने के लिये (शस्त्रादि) छूने पर उसका आधा दण्ड देना चाहिये। (समान वर्णवाले को मारने के लिये) हाथ-पैर उठाने पर दश और बीस पण दण्ड लगाना चाहिये। शस्त्र उठाने पर मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये। पाद, केश, वस्त्र और हाथ को बलपूर्वक मरोड़ने पर दश पण का दण्ड होता है और पीड़ित करते हुये वस्त्र से बाँध कर पैर से मारने पर सौ पण का दण्ड होता है। बिना रक्त निकाले काष्ठादि से मारकर दु:ख पहुँचाने पर बत्तीस पण दण्ड होता है और रक्त दिखाई देने पर दुगुना दण्ड होता है। हाथ, पैर और दाँत तोड़ने पर, कान और नाक काटने पर, फोड़ा को फोड़ देने पर तथा मार कर मृत तुल्य कर देने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। चेष्टा (सञ्चार), भोजन तथा वाणी रोकने पर, आँख आदि फोड़ने पर, कन्धा, बाहु और जाँघ (कमर) तोड़ने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। यदि एक आदमी को बहुत आदमी मिलकर मारे तो जिस अपराध का जो दण्ड है उसका दुगुना दण्ड देना चाहिये। कलह में छीनी गयी वस्तु को वापस करानी चाहिये तथा उसका दुगुना दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति किसी को मारपीट कर कष्ट पहुँचावे वह उस दु:ख से दवा-पथ्यादि में हुये व्यय को भी दे और जिस कलह में जो दण्ड है उसे भी दे। मुद्गर आदि से दीवार को विदीर्ण करने, छेद करने और गिराने पर पाँच, दश और बीस पण दण्ड देना चाहिये और फेंकने पर मध्यम साहस का दण्ड देना चाहिये। (बकरी, भेड़, हिरन आदि) क्षुद्र पशुओं को मार कर रक्त निकालने तथा निर्जीव अङ्गों (सींग आदि) के काटने पर दो पण, चार पण, छ: पण आदि (अपराध की गुरुता के अनुसार) दण्ड होता है। इन पशुओं के लिङ्ग काटने पर तथा जान से मार देने पर मध्यम साहस का दण्ड तथा इनका मूल्य भी देना पड़ता है। (गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि) बड़े पशुओं के इन अङ्गों पर चोट पहुँचाने पर या मारने पर दुगुना दण्ड होता है। अङ्कुर (कोपल) से युक्त डालों वाले वट आदि वृक्षों की शाखा, तना या संपूर्ण वृक्ष काटने पर और (आम्र आदि) जीविकोपयोगी वृक्षों के इन भागों को काटने पर क्रमश: बीस, चालीस, अस्सी पण का दण्ड होता है। चैत्य (चतुष्पथ), श्मशान, सीमा, पवित्र-स्थान और देवालय के वृक्षों तथा पीपल आदि प्रख्यात वृक्षों के शाखादि को काटने पर पूर्वोक्त दण्ड का दुगुना दण्ड होता है। पूर्वोक्त स्थानों के गुल्म (मालती आदि छोटी किन्तु घनी लतायें), गुच्छ (टेढी कुरण्ट आदि), क्षुप (करवीर आदि सीधी), लता (दीर्घ विस्तार वाली द्राक्षा आदि), प्रतान (काण्डप्ररोहविहीन सीधी बढ़ने वाली सारिवा आदि), औषधि (फल के पक जाने पर नष्ट होनेवाले धान आदि) वीरूध (काटने पर भी बढ़नेवाले गुडूची आदि) के काटने पर उपर्युक्त दण्ड का आधा दण्ड होता है।

23.22 साहसप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा साहस (वस्तु का बलपूर्वक हरण करना) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार सामान्य वस्तु के बलपूर्वक हरण को साहस कहते हैं। उसके लिये उस वस्तु के मूल्य का दूना दण्ड होता है और अपराध स्वीकार न करने पर चौगुना दण्ड होता है -

सामान्यद्रव्यप्रसभहरणात् साहसं स्मृतम्।
तन्मूल्याद् द्रविगणो दण्डो निह्नवे तु चतुर्गण॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २३०

जो साहस कराता है उसे साहसिक के दण्ड का दूना दण्ड लेना चाहिये और जो यह कर कि तुम करो जो लगेगा उसे मैं दूँगा, साहस कराता है उससे चौगुना दण्ड लेना चाहिये। अर्घ के पात्र (आचार्य, राजा, वर आदि) की निन्दा करनेवाले तथा उनकी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले, भाई की स्त्री पर प्रहार करनेवाले, संदेश को न पहुँचाने वाले (या प्रतिज्ञा किये पदार्थ को न देनेवाले), बन्द घर को खोलने या तोड़नेवाले, सटे हुये घरवाले तथा कुटुम्ब का अपकार करनेवाले - इन सबसे पचास पण का दण्ड लेना चाहिये ऐसा नियम है। स्वेच्छा से (बिना नियोग के) विधवा के साथ व्यभिचार करनेवाला, किसी के आर्तनाद करने पर (शक्ति होते हुये भी) न दौड़ने वाला, बिना कारण के दु:खपूर्ण चिल्लाहट करनेवाला और जो चाण्डाल उत्तम वर्णवालों को स्पर्श करे, शूद्रों और संन्यासियों को पितृश्राद्ध और देवयाग में भोजन करानेवाला, अनुचित शपथ लेनेवाला, अपने वर्ण के अनुपयुक्त कर्म को करनेवाला, बैल एवं बकरा आदि छोटे पशुओं को बन्ध्या करनेवाला, साधारण वस्तु को भी छिपानेवाला, दासी के गर्भ को गिरानेवाला, पिता, पुत्र, भाई, बहन, पति, पत्नी, आचार्य और शिष्य इनके पतित होने पर भी एक दूसरे द्वारा त्याग करनेवाला - ये सभी सौ पण के दण्ड के भागी हैं।

23.22.1 साहस में प्रासङ्गिक प्रकरण -

धोने के लिये दिये गये दूसरे के वस्त्र को पहनने पर धोबी को तीन पण दण्ड लगता है। बेचने, भाड़े पर देने, बन्धक रखने और मँगनी देने पर दश पण का दण्ड लगता है। पिता और पुत्र के कलह को निवारण न कर साक्षी बनने पर तीन पण दण्ड लगता है और जो उनके बीच में पड़े (शर्त सहित विवाद में शर्त रखनेवाला बनकर विवाद बढ़ावे वह आठ गुना दण्ड का पात्र होता है। जो तराजू, शासन, बाटों और सिक्कों में कपट करे वह उत्तम साहस के दण्ड का पात्र होता है। सिक्कों का जो परीक्षक असली सिक्कों को नकली कहता है और नकली सिक्कों को असली कहता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। जो वैद्य मिथ्या (बिना ज्ञान के मैं वैद्य हूँ इस प्रकार प्रचारित कर पशु, मनुष्य और राजपुरुषों की) चिकित्सा करता है वह पशुओं की चिकित्सा करने पर प्रथम साहस का, मनुष्य की चिकित्सा करने पर मध्यम साहस का और राजपुरुषों की चिकित्सा करने पर उत्तम साहस के दण्ड का भागी होता है। जो बिना व्यवहार (मुकदमें के निर्णय के ही) अबन्ध को बाँधता है तथा बद्ध (चौरादि) को छोड़ देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। माप या तौल से (छल द्वारा) जो वस्तु का आठवां भाग हरण कर लेता है उसे दो सौ पण दण्ड होता है। हरण किये गये द्रव्य के अधिक या कम होने पर उसी अनुपात में अधिक या कम दण्ड होगा। दवा, (घृतादि) तरल पदार्थ, नमक, गन्ध, धान्य, गुड़ आदि विक्रेय पदार्थों में (लाभार्थ) तुच्छ पदार्थ मिलाने पर सोलह पणों का दण्ड देना चाहिये। मिट्टी, चर्म, मणि, सूत, लोहा, काष्ठ, वल्कल वस्त्र में, अजाति में (उस जाति का न होने पर मिलावट कर ऊँची जाति का) कर देने पर विक्री का आठ गुना दण्ड होता है। पात्र में ढँकी वस्तु के

(हस्तलाघव से) उलट कर (उसके स्थान दूसरी वस्तु देकर तथा सारभाण्ड कस्तूरी आदि) कृत्रिम बनाकर जो बेचता या बन्धक रखता है तो इस प्रकार का दण्ड होता है - एक पण से कम मूल्य होने पर पचास पण, एक पण मूल्य होने पर सौ पण, दो पण मूल्य होने पर दो सौ पण दण्ड होता है और मूल्यवृद्धि के अनुसार दण्ड भी बढ़ता जाता है। (राजा द्वारा निर्दिष्ट) मूल्य की ह्रास और वृद्धि को जानते हुये (व्यवसायी परस्पर) मिलकर (लाभ के लिये स्वत:) मूल्य निर्धारित का कारु (रजक आदि) तथा शिल्पी (चित्रकार आदि) को पीड़ित करे तो उत्तम साहस का दण्ड (एक हजार पण) होता है। जो व्यवसायी परस्पर मिलकर देशान्तर से लायी गयी विक्रेय वस्तु कम मूल्य लगाकर विक्रय से रोक देते हैं या अधिक मूल्य से बेचते हैं उन्हें उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। राजा द्वारा निर्धारित मूल्य है उसी पर क्रय या विक्रय होना चाहिये। जो क्रय और विक्रय से बचता है वही व्यापारियों का लाभ है। अपने देश की वस्तु को तत्काल बेचने पर पाँच प्रतिशत और परदेशी वस्तु को बेचने पर दश प्रतिशत लाभ मिलना चाहिये। परदेश से लाई गयी वस्तु के लाने में हुये खर्च को जोड़कर क्रेता और विक्रेता के हितावह मूल्य को राजा निर्धारित करे।

23.23 विक्रीयासंप्रदानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा विक्रेता सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो विक्रेता मूल्य लेकर भी विक्रेय वस्तु को क्रेता को नहीं देता उससे उस वस्तु को वृद्धि के साथ (जो मूल्य वृद्धि या सूद मूल्य लेने के बाद हुआ है) क्रेता को दिलवाना चाहिये। यदि क्रेता देशान्तर का है तो अपने देश में ले जाकर बेचने से उसे जो लाभ मिलता वह भी दिलवाना चाहिये। यदि खरीदी भी वस्तु को क्रेता न ले तो विक्रेता दूसरे व्यक्ति को बेच दे। क्रेता के न लेन पर (नये क्रेता के लेने के समय के बीच) जो हानी हुई उसे भी पुराने क्रेता से दिलवाये। यदि क्रेता अपनी क्रीत वस्तु माँग रहा हो और विक्रेता विक्रीत वस्तु को न दे रहा हो और इस बीच राजा या दैव के उत्पात से उसमें हानि हो जाय तो यह विक्रेता की ही होती है। यदि विक्रेता एक व्यक्ति को बेचकर वस्तु को दूसरे को बेचता है अथवा दोषपूर्ण वस्तु को दोष छिपाकर अदोषपूर्ण बतलाकर बेचता है तो वस्तु के मूल्य से दुगु ना दण्ड होता है। विक्रेय वस्तु के हानि-लाभ को न जानकर यदि व्यापारी सौदा खरीदता है तो फिर अनुशय अर्थात् लौटाना नहीं चाहिये। ऐसा करने पर षष्ठांश दण्ड का भागी होता है।

23.24 संभूयसमुत्थानप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा लाभ-हानि सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार व्यवसायियों के समूह में लाभार्थ कर्म करने पर लाभ और हानि होने पर जितना जिसने द्रव्य लगाया है या जितना पहले तय हुआ है उसके अनुसार लाभ-हानि होता है। रोके जाने पर बिना आदेश के और प्रमाद द्वारा जिस व्यक्ति ने जितना नुकसान किया है वह उसे दे और जिसने राजा या दैव के उत्पात से रक्षा की है वह रक्षा की हुयी वस्तु का दशमांश का भागी होता है। मूल्य निर्धारित करने के कारण राजा बीसवाँ भाग शुल्क रूप में ले। निषिद्ध वस्तु या राजा के योग्य बेची गयी वस्तु भी राजा के पास जाती है अर्थात् राजा ले ले। शुल्क के बचने के लिये मिथ्या परिमाण बतानेवाला तथा कर देने के स्थान से भागने वाला और विवादास्पद वस्तु खरीदने तथा बेचनेवाले से वस्तु का आठगुना दण्ड लेवे। नौकादि के जल पार करानेवाला यदि स्थल का शुल्क लेता है और जो अपने पड़ोसी ब्राह्मण को (श्राद्धादि में) निमंत्रण देकर (दूर के ब्राह्मण को निमन्त्रण देता है) इसे दश पण दण्ड दे। एक साथ व्यापार करनेवालो में से किसी के देशान्तर जाने या मर जाने पर उसके द्रव्य को दामाद, बान्धव या ज्ञातिजन ले या देशान्तर से आने पर सभी व्यापारी ले या उनके न होने पर राजा ले। यदि

साथ के व्यापारियों में कोई कुटिल हो तो उसे बिना लाभ दिये बाहर कर दे यदि अशक्त हो तो दूसरे से करावे। इसी नियम से ऋत्विकों, किसानों और कारीगरों की भी विधि है।

23.25 स्तेयप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्तेय (चोरी) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार ग्राहकों (चोरों को पकड़ने के लिये राजा द्वारा नियुक्त पुरुषों) द्वारा (लोगो द्वारा चोर कहे जाने पर) चोर पकड़ा जाता है, लुप्त वस्तु के चिह्न से पकड़ा जाता है (चोरी गयी वस्तु के स्थान से चोर के पास तक) पदचिह्न से पकड़ा जाता है, पूर्व में चोरी के अपराध से पकड़ा जाता है तथा जिसका वासस्थान निश्चित न हो ऐसा पकड़ा जाता है (अर्थात् राजा द्वारा नियुक्त चोर पकड़ने-वाले अधिकारी चोरी होने पर जिसे लोग चोर कहे उसे पकड़े या जिसके पास चोरी का सामान हो उसे पकड़े या चोरी के स्थान से लेकर चोर तक जिसके पदचिह्न हों उसे पकड़े या जो पूर्व में चोरी का अपराधी हो उसे पकड़े या जिसका निवासस्थान संदिग्ध हो उसे पकड़े)। इसके अतिरिक्त शङ्का होने पर निम्नलिखित लक्षणवाले को पकड़ना चाहिये - जो जाति और नामादि छिपावे, जो भूत, स्त्री और मदपान में आसक्त हो (पूछने पर) जिसका मुख सूख जाय और स्वर बदल जाय, दूसरे के धन तथा घर को पूछने वाले को, जो वेष बदलकर घूमते हैं, जिनकी बिना आय के व्यय होता हो और जो खोई वस्तु को बेचने वाले हों। जो चोरी की शङ्का से पकड़ा गया है वह यदि अपने को शुद्ध अर्थात् निर्दोष न सिद्ध करे तो चुराये गये सामान को उससे दिलाकर चोरों के लिये विहित दण्ड से उसे दण्डित करना चाहिये। चोर से चोरी गयी वस्तु दिलाकर विविध प्रकार के वध (शारीरिक पीड़ा) से दण्डित करे। यदि ब्राह्मण चोर हो तो लालट पर (कुत्ते के पैर का) चिह्न बनाकर उसे राज्य से निकाल दे -

चौरं प्रदाप्यापहृतं घातयेद् विविधैर्वधै।
सचिह्नं ब्राह्मणं कृत्वा स्वराष्ट्राद् विप्रवासयेत् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २७०

ग्राम के भीतर हत्या या चोरी होने पर यदि ग्राम के बाहर चोर के निकलने का चिह्न न मिले तो दोष ग्रामपाल का होता है। सराय या रुकने के स्थान पर होने पर सराय के स्वामी का होता है और मार्ग में होने पर मार्गपाल या दिक्पाल का दोष होता है। अपने ग्राम में चोरी होने पर ग्राम के लोग दण्ड दे या उस गाँव के लोग दे जहाँ चोर के जाने के चिह्न मिलते हों। यदि एक क्रोश की दूरी पर कई ग्रामों के बीच चोरी हुयी है तो पाँच या दश ग्राम मिलकर चोरी की क्षतिपूर्ति करे। बन्दियों को छुड़ानेवाले, घोड़ा तथा हाथी चुरानेवाले एवं बलपूर्वक हत्या करनेवाले मनुष्यों को शूली पर चढ़ाना चाहिये। वस्त्र आदि चुरानेवालों, गाँठ काटनेवालों के हाथ और संदश से (अङ्गुठा तथा तर्जनी ऊँगली) काटनी चाहिये। द्वितीय अपराध होने पर एक हाथ और एक पैर काट लेना चाहिये। छोटी, मध्यम या बड़ी वस्तु की चोरी में दण्डकार्य में देश, काल, अवस्था और शक्ति का विचार कर वस्तु के मूल्य के अनुसार दण्ड होता है। जो व्यक्ति चोर या हत्यारे को (उसके कर्म या विचार का) ज्ञान रहते हुये भी भोजन, निवासस्थान, अग्नि (शीतापनयन निमित्त), जल, सलाह (भागने या चोरी करने की विधि का), हत्या या चोरी के साधन, मार्ग-व्यय को देता है उसे उत्तम साहस का दण्ड होता है। किसी के शरीर पर मारने के लिये शस्त्रपात करने या गर्भपात करने पर उत्तम साहस का दण्ड दिया जाता है। पुरुष और स्त्री को मारने पर (उनके शील और वृत्त के अनुसार) उत्तम या अधम साहस का दण्ड होता है। (गर्भपातादि के कारण) अत्यन्त दुष्टा, पुरुष की हत्या करनेवाली और पुल को तोड़नेवाली स्त्री को

यदि वह गर्भिणी न हो तो गले में शिला बाँधकर जल में फेंक दे। जहर देनेवाली, आग लगानेवाली तथा पति, गुरु और सन्तान की हत्या करनेवाली स्त्री के कान, हाथ, नाक और ओठ काटकर बैलों से मरवा दे। जिस व्यक्ति की हत्या की गयी है और हत्यारे का पता नहीं है उसके पुत्रों से पता लगाना चाहिये कि उसका किसके साथ झगड़ा था। उससे संबद्ध व्यभिचारिणी स्त्रियों से भी पृथक्-पृथक् पूछना चाहिये। (मृत व्यक्ति के विषय में) पूछना चाहिये कि स्त्री, धन या जीविका किस उद्देश्य से वह गया था और किसके साथ गया था। मृत्यु के स्थान के लोगों से भी विश्वासपूर्वक पूछना चाहिये। किसी के खेत (खेत की फसल), घर, वन (उद्यान इत्यादि), विवीत (सराय या बाड़ा) तथा खलिहान में आग लगानेवाले एवं राजपत्नी के साथ व्यभिचार करनेवाला इनके शरीर में कट (फूस) लपेट कर जला देना चाहिये।

23.26 स्त्रीसंग्रहणप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा स्त्रीसंग्रहण सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार परस्त्री का केश पकड़ने, सद्य: काम-क्रीडा से उत्पन्न चिह्नों (नखक्षतादि) तथा दोनों की स्वीकृति देखकर (व्यभिचारी को) पकड़े -

पुमान् संग्रहणे ग्राह्यः केशाकेशि परस्त्रिया।
सद्यो वा कामजैश्चिह्नैः प्रतिपत्तौ द्वयोस्तथा॥

याज्ञवल्क्यस्मृति, व्यवहाराध्याय, श्लोक संख्या २८३

नीवी (वस्त्रग्रन्थि), स्तन, आच्छादन, जाँघ और केश का स्पर्श, बिना देश-काल के भाषण और एक आसन पर बैठना - ये व्यभिचारी के लक्षण हैं और इन्हें पकड़ना चाहिये। (पति, पिता, भाई इत्यादि द्वारा) निषिद्ध पुरुष के साथ संभाषण पर स्त्री को सौ पण दण्ड होता है और इनके द्वारा प्रतिषिद्ध होने पर पुरुष द्वारा संभाषणादि करने पर पुरुष को दो सौ पण दण्ड होता है और उन दोनों के प्रतिषिद्ध होने पर संग्रहण (संभोग) में जो वर्णानुसार दण्ड होता है वह लगता है। सजातीय स्त्री से व्यभिचार करने पर उत्तम साहस का दण्ड होता है। अनुलोम वर्ण (अर्थात् अपने से छोटी जाति की) स्त्री से व्यभिचार करने पर मध्यम साहस का दण्ड होता है। प्रतिलोम (अर्थात् अपने से बड़ी) स्त्री से व्यभिचार करने पर वध दण्ड होता है। अपने से हीन वर्ण के साथ व्यभिचाररत स्त्री का कान आदि काट लेना चाहिये (उच्च या सवर्ण के साथ व्यभिचारिणी को दण्ड देना चाहिये)। विवाह के लिये अलंकृत (तैयार) सवर्णा कन्या का अपहरण करनेवाले को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। दूसरी स्थिति में (अर्थात् जहाँ कन्या का तत्काल विवाह न हो रहा हो) अधम साहस का दण्ड देना चाहिये। अपने से उच्च जाति की कन्या का अपहरण करने पर वध का दण्ड देना चाहिये। कन्या के भी सकामा और अपने से नीच जाति का होने पर (भगाने में) दोष नहीं होता, अन्यथा (कन्या का प्रेम न होने पर उत्तम साहस का) दण्ड होता है। (हीन वर्ण की अकामा कन्या को) नखक्षतादि से दूषित करने पर हाथ काट लेना चाहिये। उत्तम वर्ण की कन्या हो तो वध विहित है। स्त्री (कन्या) के (विद्यमान अपस्मार, क्षय, व्यभिचार आदि) दोषों को उद्घाटित करने पर सौ पण का दण्ड होता है और मिथ्या दोष कहने पर दौ सौ पण का दण्ड होता है। पशु से मैथुन करनेवाले को सौ पण का दण्ड होता है। हीन वर्ण की स्त्री और गौ से मैथुन करनेवाले को मध्यम साहस का दण्ड होता है। दासी तथा भुजिष्या (किसी पुरुष विशेष से परिग्रहवाली) यदि किसी व्यक्ति की सेवा के लिये अवरुद्ध है तो उनके गम्य होने पर भी (उनके विशेष व्यक्ति की सेवा में नियत होने के कारण) उनके संभोग करने पर पुरुष पचास पण दण्ड का भागी होता है। दासी (स्वैर वृत्ति से जीविका चलानेवाली व्यभिचारिणी) से बलपूर्वक (बिना द्रव्य

के) व्यभिचार करनेवाले को दश पण दण्ड बताया गया है। ऐसी स्वैरिणी की कामना न होने पर यदि बहुत लोग बलपूर्वक संभोग करें तो प्रत्येक को चौबीस पण दण्ड होता है। मूल्य लेकर (और स्वस्थ होने पर भी) मूल्य देने वाले पुरुष से संभोग की इच्छा न करनेवाली वेश्या उसे दूना धन लौटावे। यदि धन न ली हो तो (शुल्क तय करने के बाद इन्कार करनेवाली) उतना धन लौटावे। इसी प्रकार दण्ड वेश्या के पास जानेवाले पुरुष पर लगता है (अर्थात् मूल्य तय कर और संभोग कर ने देनेवाला दूना दे और मूल्य तय कर संभोग न करनेवाला निश्चित मूल्य दे)। जो स्त्री की योनि में संभोग न कर अयोनि (मुखादि) में मैथुन करता है या किसी पुरुष के समक्ष मैथुन करता है या संन्यासिनी के साथ मैथन करता है उसे चौबीस पण दण्ड लगता है। चाण्डाली के साथ मैथुन करनेवाले के शरीर पर भग का चिह्न बनाकर (दागकर) राष्ट्र से बाहर निकाल से। (चाण्डाली के साथ संभोग करने पर) चाण्डाल हो जाता है। आर्या (चातुर्वर्ण्य की स्त्री) से संभोग करने पर चाण्डाल का वध ही दण्ड है।

23.27 प्रकीर्णकप्रकरण

महर्षि याज्ञवल्क्य द्वारा प्रकीर्णक (व्यवहार सम्बन्धी अन्य विषय) सम्बन्धी विवादों का निर्णय इस प्रकरण में किया गया है। तदनुसार जो राजा के आदेश को अधिक या कम करके लिखता है और परस्त्रीगामी या चोर को (राजा दण्डार्थ न सौंपकर) छोड़ देता है - इन दोनों को उत्तम साहस का दण्ड विहित है। अभक्ष्य पदार्थ से ब्राह्मण को दूषित करनेवाला अर्थात् ऐसे पदार्थों या उनके संपर्क से ब्राह्मण के अन्न को दूषित कर खिलानेवाला उत्तम साहस के दण्ड का पात्र होता है। क्षत्रिय को अभक्ष्य से दूषित करनेवाला मध्यम साहस के दण्ड का भागी होता है। वैश्य को दूषित करनेवाले को प्रथम साहस का दण्ड देना चाहिये और शूद्र को दूषित करनेवाले को अधम साहस का आधा दण्ड देना चाहिये। नकली सोने का व्यवहार करनेवाले तथा (कुत्ता आदि के) कुत्सित मांस को बेचनेवाले को (नाक, कान और हाथ) तीन अङ्ग काट कर उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। यदि पशु का स्वामी हटो-हटो कह रहा है (और कोई नहीं हटता और पशु से घायल होता है तो) स्वामी का कोई अपराध नहीं होता। (इसी प्रकार हटने का आह्वान करने के बाद भी) काष्ठ, ढेला, बाण, पत्थर, हाथ और (रथादि में) जुते पशुओं से चोट खाने पर भी चलानेवाले और हाँकनेवाले का कोई दोष नहीं होता। गाड़ी में जुते बैल की रस्सी टूटने पर या गाड़ी के जुये आदि के टूटने से या गाड़ी के पीछे से खिसकने से यदि किसी को चोट लगती है तो स्वामी (गाड़ीवान्) का दोष नहीं होता। दाँतवाले (हाथी आदि) तथा सींगवाले (बैल आदि) पशुओं (के किसी पर आक्रमण करने पर) से समर्थ होने पर भी स्वामी यदि किसी को न बचाये तो प्रथम साहस का दण्ड लगता है और यदि चिल्लाने पर भी न छुड़ावे तो इसका दुगुना दण्ड होता है। जार को (स्वकुल के मर्या-दाभङ्ग से) जो चोर-चोर कहता है उसे पाँच सौ पण का दण्ड लगाना चाहिये और जो जार (व्यभिचारी) को द्रव्य लेकर छोड़ देता है उससे जितना लिया है उसका आठ गुना लेना चाहिये। राजा के अनभिमत (शत्रु आदि की स्तुति) को बार-बार कहनेवाले, राजा की निन्दा करनेवाले तथा उसकी गुप्त बातों को प्रकट करनेवाले की जिह्वा काटकर राज्य से निकाल दे। मृतक के अङ्ग में लगे (वस्त्रादि) को बेचनेवाले, गुरु (माता, पिता, आचार्यादि) की ताड़ना करनेवाले तथा राजा की सवारी एवं आसन पर चढ़नेवाले को उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिये। किसी को दोनों आँखें को फोड़नेवाले, राजा के अनिष्ट (राज्यनाशादि) की घोषणा करनेवाले तथा ब्राह्मण बनकर जीविका चलानेवाले शूद्र को आठ सौ पण का दण्ड लगता है। गलत निर्णय किये गये मुकदमों को राजा पुन: निर्णीत कर सभ्य (निर्णय करने वाले सभासद) तथा जीतनेवाले से विवाद में हारने वाले को दिये गये दण्ड का दुगुना धन दण्ड में ले। जो न्यायपूर्वक

पराजित होने पर भी मैं पराजित नहीं हूँ ऐसा मानता है, उस जेता के विचार से आनेवाले को विधिपूर्वक पुन: पराजित कर दूना दण्ड लगावें। यदि राजा ने (लोभादिवशात्) अन्याय से किसी से दण्ड लिया हो तो उसे तीस गुना करके वरुण को उस धन निवेदन कर ब्राह्मणों को दान कर दे और अन्याय से जिससे जितना दण्ड लिया हो उसे उतना लौटा दे।

23.28 पारिभाषिक शब्दावली

स्मृति - "धर्मशास्त्र तु वै स्मृति:" के मतानुसार स्मृतिग्रन्थ धर्मशास्त्रस्वरूप हैं।

वाद - किसी अन्य के द्वारा धर्मशास्त्र तथा आचार के विरुद्ध प्रताड़ित होने पर पीड़ित व्यक्ति राजा से निवेदन करे तो वह वाद का विषय होता है

प्रमाण -किसी भी वाद के लिखित, उपभोग और साक्षी ये तीन प्रमाण हैं। इनमें किसी के न होने पर दिव्य प्रमाणों में से कोई प्रमाण का ग्रहण करना चाहिये।

साक्षी - तदनुसार तपस्वी, दानशील, कुलीन, सत्यवक्ता, धर्मप्रधान, सरलस्वभाव, पुत्रवान्, धनयुक्त तथा श्रौत-स्मार्त क्रिया में रस कम से कम तीन साक्षी होते हैं।

लेख्य - यदि कोई विषय धनी और ऋणी के मध्य अपनी इच्छा के अनुसार तय हुयी है तो ब्याज की दर क्या है और उसे कब लौटाना है इसे साक्षियों के समक्ष धनी को लिख देना चाहिये यह प्रमाण लेख्य कहलाता है।

दिव्य - तुला, अग्नि, जल, विष, कोष में विशुद्धि (संदेह की निवृत्ति) के लिये पाँच दिव्य प्रयोग किये जाते हैं।

औरस - सवर्ण पत्नी से उत्पन्न पुत्र औरस होता है। उसी के समान पुत्रिका (भाई विहीन कन्या) का पुत्र होता है।

क्षेत्रज - पत्नी में सगोत्र या अन्य से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज होता है।

23.29 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. व्यवहार पद को स्पष्ट करते हुये चतुष्पाद व्यवहार का निरूपण कीजिये ?
2. ऋणादान सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
3. साक्षी (गवाह) सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
4. लेख्य सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
5. दायविभाग सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
6. दत्ताप्रदानिक सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
7. वेतनादान सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
8. द्यूत सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
9. स्तेय (चोरी) सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?
10. स्त्रीसंग्रहण सम्बन्धी प्रमुख विवादों का निरूपण कीजिये ?

23.30 सारांश

इस प्रकार हमने याज्ञवल्यक स्मृति के व्यवहाराध्याय का अध्ययन किया। यह जाना कि किस प्रकार प्राचीन भारत में न्याय व्यवस्था सुदृढ थी। यह जाना कि किस प्रकार प्रकार न्याय प्रक्रिया चलती है,? किस प्रकार प्रमाणादि का उपयोग किया जाए ? किस प्रकार ब्याज प्रकरण, स्त्री प्रकरण, स्तेय (चोरी प्रकरण) क्रीतानुशय (खरीदी हुई वस्तु सम्बन्धी प्रकरण इत्यादि प्रकरणों का निदान किया जाए ? इस समस्त उपायों का उल्लेख याज्ञवल्यक स्मृति के व्यवहाराध्याय में किया गया है। इन समस्त तथ्यों का अध्ययन हमने इस इकाई में किया है।

23.31 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. याज्ञवल्क्य स्मृति (व्यवहाराध्याय) - व्याख्याकार डॉ, कमलनयन शर्मा, जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, राजस्थान 1995.
2. याज्ञवल्क्यस्मृति - व्याख्याकार थानेशचन्द्र उप्रैती, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1992.
3. याज्ञवल्क्य स्मृति - सम्पादक गणपति शास्त्री, मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स, वाराणसी 1952.
4. याज्ञवल्क्य स्मृति - जगन्नाथ शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी,1973.